शिक्षा में कला का स्थान

नंदलाल बसु

कला शिक्षण का उद्देश्य कलाकार का निर्माण नहीं बल्कि कलाबोध और कलात्मक व्यवहार को विकसित करना है। इसके लिए अलग से कला विषय की ज़रूरत नहीं है बल्कि हर विषय के शिक्षण में, शाला की साज-सज्जा में, और दैनिक व वार्षिक गतिविधियों में कलात्मकता का पुट समाहित करना आधिक उपयोगी है। नंदलाल बसु के ये विचार आज भी उतने ही मौजू हैं जितने वे स्वतंत्रता प्राप्ति के समय थे जब भारत में नई शिक्षा की बुनियाद रखी जा रही थी। नंदलाल कला के बंगाल स्कूल के प्रवर्तक अवनीन्द्रनाथ टैगोर के शागिर्द थे और उन्होंने रवीन्द्रनाथ के आग्रह पर शान्तिनिकेतन में कला शिक्षा के लिए कलाभवन की स्थापना की थी। उन्होंने गाँधीजी के आग्रह पर काँग्रेस के अधिवेशनों को कलात्मक बनाने का ज़िम्मा लिया था और नेहरूजी के आग्रह पर नवरचित भारतीय संविधान की हस्तलिखित पाण्डुलिपि को सजाया-सँवारा था। भारतीय लोक और शास्त्रीय कलाओं पर आधारित राष्ट्रीय मगर आधुनिक भारतीय कला के सूत्रधारों में नंदलाल बसु अग्रणी थे। उनके अनुसार स्कूलों में कला शिक्षा का उद्देश्य कला के सम्बन्ध में एक पारखी नज़र विकसित करना और जीवन के हर पहलू में कलाबोध का अन्तःकरण करना है, चाहे वह टेबिल पर अपना सामान जमाना हो, या कपड़े सुखाने के लिए टाँगना हो, या उपयोगी सामान बनाना या उसका रंग-रोगन हो। स्कूल इसमें कैसे मदद कर सकता है, आईए पढ़ें।

मनुष्य ने आनन्द की प्राप्ति और ज्ञान के लिए जितने उपायों का विकास किया है, उनमें भाषा का विशेष स्थान है। साहित्य, दर्शन, विज्ञान और प्रकृति के नाना विषयों की चर्चा भाषा को माध्यम बनाकर ही की जाती है। साहित्य मनुष्य को आनन्द देता है, पर उसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित होता है। उसके उस अभाव की पूर्ति करती हैं ललित कलाएँ - नृत्य, संगीत एवं दूसरी कलाएँ। जैसे साहित्य की अभिव्यक्ति

की अपनी विशिष्टता है, वैसे ही नृत्य, संगीत एवं ललित कलाओं की भी। मनुष्य अपनी इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा बाह्यजगत की समस्त वस्तुओं का स्थूल ज्ञान एवं उनके प्रति रसानुभूति का अनुभव करता है और उसे ही कला के माध्यम से दूसरों के सामने प्रस्तुत करता है। शिक्षा के क्षेत्र में कला की चर्चा के कारण मनुष्य की अवधारणा एवं रसानुभूति, दोनों उत्कर्ष को प्राप्त करती हैं और उसे कलात्मक अभिव्यक्ति पर अधिकार प्राप्त होता है। जिस प्रकार आँख का काम कान द्वारा नहीं हो सकता, उसी प्रकार चित्रकला, संगीत या नृत्य की शिक्षा केवल लिखने-पढ़ने से नहीं हो सकती।

यदि हमारी शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास हो तो हमारे पाठ्यक्रम में कला का स्थान अन्यान्य पढ़ाई-लिखाई के विषयों के समान होना चाहिए। हमारे देश में विश्वविद्यालयों की ओर से अब तक जो व्यवस्था की गई है, वह नितान्त अपर्याप्त है। इसका एक कारण सम्भवतः यह है कि हमारे यहाँ अनेक लोगों की मान्यता है कि कला-साधना मात्र पेशेवर कलाकारों का काम है, साधारण आदमी को उससे कुछ लेना-देना नहीं है। बहुत-से पढ़े-लिखे लोग तक कला के सम्बन्ध में अपने अज्ञान के कारण संकोच का अनुभव नहीं करते, जन साधारण की तो बात ही छोड़िए। वे तो फोटो और चित्र का

अन्तर भी नहीं समझ पाते। वे बच्चों की जापानी गुड़िया को एक श्रेष्ठ कलाकृति मानकर उसे अवाक् देखते रहते हैं। महारद्दी लाल-नीले, बैंगनी रंगवाले रैपरों को देखकर उनके नेत्रों को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती। सच पूछिए तो उन्हें अच्छा ही लगता

है। अधिक उपयोगिता की दुहाई देते हुए आसानी-से उपलब्ध मिट्टी की कलसी के बदले टिन का कनस्तर इस्तेमाल करते हैं।

ऊपर से देखने पर विद्या के क्षेत्र में देशवासियों की जैसी सांस्कृतिक उन्नति परिलक्षित होती है, लेकिन रसानुभूति के क्षेत्र में उनकी दीनता वैसी ही बढ़ती दिखलाई पड़ती है। वस्तुतः यह स्थिति कष्टदायक हो उठी है। इससे मुक्त होने का एक ही उपाय है - आज के शिक्षित समाज के बीच कला की शिक्षा का प्रचलन, क्योंकि यह शिक्षित समाज ही जन साधारण का आदर्श होता है।

सौन्दर्यबोध के अभाव में मनुष्य केवल रसानुभूति से वंचित रह जाता हो ऐसा नहीं, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उसकी क्षति होती है। सौन्दर्यबोध के अभाव में जो लोग घर के आंगन और कमरों में दुनिया भर का कूड़ा जमा करके रखते हैं, अपने शरीर एवं वस्त्रों की गन्दगी साफ नहीं करते, घर की दीवार पर, रास्ते में, रेल के डिब्बों में पान की पीक थूकते चलते हैं, वे केवल अपने स्वास्थ्य को ही नहीं बल्कि पूरे राष्ट्र के स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाते हैं। जिस प्रकार उनके द्वारा समाज के शरीर में बहुत-से रोगों के कीटाणु संक्रमित होते हैं, उसी प्रकार उनके कुत्सित आचरण का कु-आदर्श भी जन साधारण में फैल जाता है।

क्या कला केवल धनी लोगों के लिए है?

हममें से कुछ लोग ऐसे हैं जो कला-साधना पर विलासी एवं धनी लोगों का एकमात्र अधिकार मानते हैं और इस प्रकार उसे अपने दैनन्दिन जीवन से कोसों दूर रखना चाहते हैं। वे भूल जाते हैं कि सौन्दर्य ही कला का प्राण है, अर्थ की तुला पर कलाकृति को नहीं तोला जा सकता। गरीब संथाल अपनी छोटी-सी मिट्टी की झोपड़ी को लीप-पोतकर साफ करके रखता है, अपनी कथरी–गुदड़ी समेटकर रखता है और कॉलेज में पढ़ने वाला एक लड़का महल जैसे सुन्दर हॉस्टल या मेस के कमरे में महँगे कपड़े-लत्ते यों ही बिखेरकर मोड़-मुसड़कर रखता है। स्पष्ट है कि गरीब संथाल का सौन्दर्यबोध उसके जीवन का अंग है, सजीव है, और धनी लड़के का सौन्दर्यबोध कपड़ों तक सीमित है, निर्जीव है। पढ़े-लिखे लोगों को कला-साधना के नाम पर कैलेण्डर में छुपे मेमसाहब के चित्र को फ्रेम में मढ़वाकर एक सचमुच के अच्छे चित्र के बगल में टाँगकर रखते हुए मैंने स्वयं देखा है। छात्रों में देखता हूँ, चित्र के फ्रेम पर कपड़ा झूल रहा है, पढ़ने की टेबल पर चाय का कप, शीशा, कंघी आदि पड़े हैं और कोको के टिन में कागज़ का फूल लगा है। साज-सज्जा में धोती पर खुले गले का कोट, साड़ी के

साथ ऊँची एड़ीवाला मेमसाहबी जूता - हर कहीं संगति और सौन्दर्य का अभाव दिखाई देता है। हमारे पास पैसे का अभाव हो या न हो, सौन्दर्यबोध का अभाव अवश्य है।

कला से पेट भरेगा क्या?

कुछ और लोग भी हैं जो कहते हैं - कला से पेट भरेगा क्या? यहाँ एक बात ध्यान में रखनी होगी। जिस प्रकार साहित्य के दो पक्ष हैं - एक आनन्द और ज्ञान का पक्ष तथा दूसरा आर्थिक पक्ष, उसी प्रकार कला के भी दो पक्ष हैं - एक जो आनन्द देता है और दूसरा जो अर्थ देता है। इनको ललित कला और शिल्प कहा जाता है। ललित कला दैनन्दिन दुख-द्वन्द्व से संकुचित हमारे मन को मुक्ति प्रदान करती है। शिल्प हमारे दैनन्दिन उपयोग में आने वाली वस्तुओं को केवल अपने जादुई स्पर्श से सुन्दर बनाकर हमारी यात्रा को सुखमय ही नहीं बनाता वरन् अर्थोपार्जन का आधार बनाता है। शिल्प की अवनति के फलस्वरूप देश की आर्थिक अवनति भी हुई है। अतः आवश्यकतानुसार कला तथा शिल्प का उपयोग न करने से देश की बहुत आर्थिक क्षति भी होती है।

कला शिक्षण की ज़रूरत और प्राथमिक उद्देश्य

कला शिक्षण के अभाव में न केवल हमारी वर्तमान जीवन-यात्रा असुन्दर हो गई है बल्कि हमारे अतीत की रस-सृष्टि द्वारा निर्मित रचनाओं की सौन्दर्य-निधि से भी हम वंचित हुए जा रहे हैं। हम लोगों की परखने की दृष्टि तैयार नहीं हो सकी। फलस्वरूप, देश में चारों ओर बिखरी चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापना के सौन्दर्य को समझाने के लिए विदेशियों की आवश्यकता पड़ी। आधुनिक कला-कृतियों का भी जब तक विदेशी

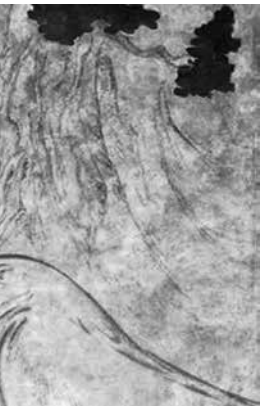

बाज़ारों में मूल्यांकन नहीं हो जाता तब तक हमारे यहाँ उनका आदर नहीं होता। यह हमारे लिए लज्जा की बात है।

इनके निराकरण के लिए क्या किया जाए, इस पर विचार किया जाए। कला शिक्षा की पहली मांग है कि प्रकृति को एवं अच्छी कलात्मक वस्तुओं को श्रद्धा सहित देखा जाए, उनके निकट रहा जाए और जिन व्यक्तियों का सौन्दर्यबोध जागृत है, उनसे उस सम्बन्ध में चर्चा करके कलाकृति के सौन्दर्य को समझा जाए। विश्वविद्यालयों का यह कर्तव्य है कि अन्य विषयों के साथ-साथ वे कला विषय को भी पाठ्यक्रम में रखें, परीक्षा की दृष्टि से कला को अनिवार्य विषय मानें और विद्यार्थी प्रकृति के निकट सम्पर्क में आ सकें, इसकी व्यवस्था करें। अंकन-पद्धति की शिक्षा से विद्यार्थियों की अवलोकन शक्ति का विकास होगा और इससे साहित्य, दर्शन, विज्ञान इत्यादि विषयों के क्षेत्र में भी उन्हें सही दृष्टि प्राप्त होगी। विश्वविद्यालयों की परीक्षा पास करने से ही कोई बड़ा कवि नहीं बन जाता। उसी तरह विश्वविद्यालय में कला की शिक्षा प्राप्त करके ही हर लड़का/लड़की अच्छा कलाकार नहीं बन सकेगा। ऐसी आशा करना भूल होगी।

विद्यालयों में कला शिक्षण के लिए क्या करें?

सबसे पहले विद्यालय में, लाइब्रेरी में, पढ़ने के कमरे तथा रहने के कमरे में कुछ अच्छे चित्र एवं मूर्तियाँ तथा अन्यान्य ललित कला एवं दस्तकारी वाली कृतियाँ सजाकर रखनी होंगी। उनके अभाव में इनके अच्छे फोटो या नकल रखी जा सकती है। दूसरी बात, उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा ऐसी अनेक पुस्तकें लिखवानी होंगी जिनमें अच्छी कलाकृतियों के चित्र हों, उनका इतिहास हो और जो लड़के/लड़कियों को सहज ही समझ में आएँ। तीसरी बात, बीच-बीच में फिल्मों के माध्यम से स्वदेश एवं विदेश की चुनी हुई अच्छी कलाकृतियों से विद्यार्थियों का साक्षात्कार कराना होगा।

चौथी बात, बीच-बीच में योग्य शिक्षकों के साथ पास के अजायब घर या आर्ट गैलरी में विद्यार्थियों को भेजना होगा ताकि वे श्रेष्ठ कृतियाँ देख सकें। स्कूलों में यदि फुटबॉल मैच देखने के लिए भेजने का इन्तज़ाम किया जा सकता है तो आर्ट गैलरी देखने के लिए क्यों नहीं? एक बात ध्यान में रखिए कि एक अच्छी कलाकृति को अपनी आँखों से देखकर एवं समझकर कला की जितनी परख विकसित होती है,

उतनी एक सौ भाषण सुनकर भी नहीं होती। अच्छे चित्र या अच्छी मूर्तियाँ यदि बचपन से बच्चे देखते रहें तो कुछ समझ में आए या न आए, उनकी दृष्टि तैयार होगी। बाद में उनमें अपने आप अच्छी-बुरी कलाकृति का विवेचन करने की शक्ति पैदा होगी और उनका सौन्दर्यबोध विकसित होगा।

पाँचवी बात, प्रकृति के निकट सम्पर्क में बच्चे आ पाएँ, इस उद्देश्य से हर ऋतु में विशेष उत्सवों का आयोजन करना होगा। इन आयोजनों में इस ऋतु-विशेष में पैदा होने वाले

फल-फूलों का संग्रह करना और काव्य तथा कला के क्षेत्र में उस ऋतु से सम्बन्धित जो भी श्रेष्ठ रचनाएँ उपलब्ध हैं, उनसे जहाँ तक सम्भव हो, विद्यार्थियों को परिचित कराना उचित होगा।

छठी बात, प्रकृति में जो ऋतु उत्सव चल रहा है, उससे विद्यार्थियों को परिचित कराना। शरद ऋतु में धान के खेत और कमल से भरे तालाब (अर्थात् कमल-वन) तथा वसन्त ऋतु में पलाश और सेमल की बहार वे स्वयं अपनी आँखों से देख सकें, इसकी व्यवस्था करनी होगी। विशेषकर शहर में रहने वाले विद्यार्थियों के लिए यह व्यवस्था बहुत ज़रूरी है। गाँव के विद्यार्थियों की दृष्टि इस ओर आकर्षित करवाना पर्याप्त होगा। इन सब ऋतु उत्सवों के लिए विशेष रूप से छुट्टी देकर वनभोज की व्यवस्था करनी चाहिए। और ऋतु के उपयुक्त वेशभूषा एवं खेलकूद आदि का आयोजन करना चाहिए। प्रकृति के साथ एक बार सम्पर्क स्थापित हो जाने पर, प्रकृति से वास्तव में प्रेम हो जाने पर, विद्यार्थी के मन में रस का स्रोत कभी सूखेगा नहीं, क्योंकि प्रकृति युग-युगान्तर से कलाकार के लिए कला का आधार उपलब्ध कराती रही है।

अन्तिम बात यह है कि साल में किसी एक समय विद्यालय में एक कला महोत्सव करना होगा। उसमें हर विद्यार्थी कोई-न-कोई चीज़ अपने

हाथ से बनाकर श्रद्धा सहित लाकर रखेगा - भले ही वह कितनी भी सामान्य हो। विद्यार्थियों द्वारा बनाई गई वस्तुएँ उत्सव के प्रति अर्घ्य स्वरूप होंगी, उन्हें उसी रूप में ग्रहण करना होगा। संगीत, नृत्य जुलूस (शोभायात्रा) आदि के द्वारा उत्सव को सर्वांग सुन्दर बनाने की चेष्टा करनी होगी। उत्सव के लिए कोई निश्चित समय तय करना कठिन है, देश-भेद के अनुसार वह भिन्न-भिन्न होगा। बंगाल के लिए शरद ऋतु ही सबसे उपयुक्त लगती है।

जहाँ तक हमें पता है, हमारे देश में एकमात्र रवीन्द्रनाथ ने शिक्षा के क्षेत्र में कला-साधना को उपयुक्त स्थान दिया था। विश्वविद्यालयों में प्रचलित वर्तमान शिक्षा पद्धति के फलस्वरूप उन्हें भी कदम-कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ा था। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में कला का प्रशिक्षण शामिल न होने के कारण अभिभावकगण इसे सर्वथा अप्रयोजनीय मानते हैं। फलस्वरूप, जिन बच्चों में बचपन में बहुत-सी कलाओं के प्रति अनुराग दिखाई पड़ता है, वे भी प्रवेशिका परीक्षा के साल के दो साल पहले से कला की अप्रयोजनीयता के प्रति सजग हो उठते हैं और उनका कला प्रेम इस समय से कम होते-होते अन्त में एकदम समाप्त हो जाता है। समय आ गया है, इस ओर हमारे सर्वविद्या एवं ज्ञान-चर्चा के केन्द्र विश्वविद्यालय विशेष ध्यान दें।

सीधी-सी बात है, कला के सम्बन्ध में शिक्षित समाज एवं विश्वविद्यालय की उदासीनता कम होने से ही कला चर्चा का प्रसार होगा और उसके फलस्वरूप देशवासियों का सौन्दर्यबोध तथा उनकी पर्यवेक्षण शक्ति बढ़ेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

नंदलाल बसु (1882-1966): आधुनिक भारतीय कला के प्रवर्तकों में से एक और प्रासंगिक आधुनिकतावाद के प्रतिष्ठित व्यक्ति। वे अपनी भारतीय पद्धति की चित्रकारी के लिए जाने जाते थे। वे 1922 में कला भवन, शान्तिनिकेतन के अध्यक्ष भी बने।

सम्पादकीय सहयोग: सी.एन. सुब्रह्मण्यम।

सभी चित्र: नंदलाल बसु। संविधान सभा ने भारतीय संविधान के प्रथम संस्करण के चित्र बनाने के लिए नंदलाल बसु से आग्रह किया था। नंदलाल बसु ने इसके लिए कलाकारों की एक टीम बनाई और इस काम को अंजाम दिया। इन्होंने स्कूली बच्चों के लिए विश्वभारती (शान्तिनिकेतन) द्वारा प्रकाशित भाषा शिक्षण की प्रारम्भिक पुस्तकों (सहज पाठ) के लिए भी चित्र बनाए थे।